BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed Open Access Journal
issn : 3048-6971
Vol. 3, Issue 2, April-June, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श : स्वर और संवेदना का विश्लेषण

डॉ. सुनीता भारती
सहायक प्राध्यापिका
हिन्दी विभाग
ए जे एम कॉलेज, बनमनखी, पूर्णियाँ, बिहार
(पूर्णियाँ विश्वविद्यालय, पूर्णियाँ)

परिचय :–

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श एक क्रांतिकारी साहित्यिक और सामाजिक आंदोलन है, जो दलित समुदाय की उपेक्षा, शोषण और आत्मसम्मान के प्रश्नों को केंद्र में लाता है। यह विमर्श केवल साहित्य तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक–राजनीतिक चेतना का वह साधन है, जो वर्णव्यवस्था की ढांचागत हिंसा को चुनौती देता है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के मुक्ति सिद्धांत से प्रेरित यह विमर्श दलितों को आत्म–सम्मान और समानता की आवाज़ देता है। हिंदी साहित्य में इसका प्रारंभ प्रेमचंद की रचनाओं जैसे ''सद्गति'' और ''ठाकुर का कुआँ'' से होता है, जो दलित जीवन की त्रासदी को सहानुभूति के साथ चित्रित करती हैं। किंतु आधुनिक दलित विमर्श 1980–90 के दशक में मंडल आयोग और मराठी दलित साहित्य के प्रभाव से उभरा, जब ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, कुसुम मेघवाल और अजय नावरिया जैसे लेखकों ने दलित अनुभवों को आत्म–चेतना के साथ प्रस्तुत किया। दलित विमर्श का स्वर विद्रोही और आक्रोशपूर्ण है, जो अनैतिक कथाओं को खंडित कर लोकभाषा और बोलचाल को साहित्यिक मान्यता प्रदान करता है। वाल्मीकि की ''जूठन'' इसका सशक्त उदाहरण है, जहाँ शोषण की कठोर सच्चाई प्रतिरोध की भाषा में व्यक्त होती है। संवेदना की दृष्टि से यह विमर्श पीड़ा, अपमान और संघर्ष की गहन अनुभूति को उजागर करता है, जो दलित जीवन की वास्तविकता को मानवीय आयाम देता है। कुसुम मेघवाल की कविताएँ दलित स्त्री के दोहरे शोषण को रेखांकित करती हैं, जबकि नावरिया की ''पटकथा'' आधुनिक दलित युवा की आंतरिक उथल–पुथल को चित्रित करती है। यह संवेदना केवल दुखांत नहीं, बल्कि सशक्तिकरण और आशा की ओर उन्मुख है। दलित विमर्श ने डिजिटल मंचों और वैश्विक आत्मसम्मान विमर्शों से प्रभावित होकर अपनी पहुंच बढ़ाई है। इस अध्ययन का उद्देश्य दलित विमर्श के स्वर और संवेदना का ढांचागत और साहित्यिक विश्लेषण करना है, जो पाठ–आधारित विश्लेषण और उत्तर–औपनिवेशिक सिद्धांतों पर आधारित है। यह विश्लेषण हिंदी साहित्य की समावेशिता को रेखांकित करता है, जो सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं को उजागर करता है। दलित विमर्श हिंदी साहित्य को समृद्ध कर समाज की अंतर्निहित विषमताओं को चुनौती देता है।

बीजक शब्द :– संकीर्णता, वैचारिक, प्रासंगिकता, रेखांकित, साहित्यिक, समकालीन।

दलित विमर्श का उद्भव और विकास

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श एक गहन वैचारिक और साहित्यिक आंदोलन है, जो जातिगत ढांचे की हिंसा को तोड़कर दलित आत्मसम्मान की पुनर्रचना करता है। इसका उद्भव भारतीय सामाजिक–धार्मिक इतिहास में गहराई से जुड़ा है, जहाँ भक्तिकाल में कबीर और रैदास जैसे निर्गुण संत कवियों ने जातिवादी संकीर्णता की कटु आलोचना की। ये कवि दलित चेतना के प्रारंभिक रूप को व्यक्त करते हैं, जो वर्णव्यवस्था के विरुद्ध मानव समानता की मांग करते हैं। आधुनिक युग में दलित विमर्श का विकास 19वीं सदी के सामाजिक सुधार आंदोलनों से संनादति है, जहाँ ज्योतिबा फुले और डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारों ने दलित मुक्ति के वैचारिक आधार को सुदृढ़ किया। अम्बेडकर के सिद्धांतों ने दलितों में आत्म–सम्मान और समानता की चेतना जागृत की, जो साहित्य में प्रतिरोध की अभिव्यक्ति बनी।

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श का औपचारिक उद्भव 20वीं सदी के प्रारंभ में हुआ। 1914 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हीरा डोम की कविता ''अछूत की शिकायत'' को हिंदी की प्रथम दलित रचना माना जाता है, जो दलित पीड़ा को

@2025 Bihar Shodh Samaagam

मुखरित करती है। प्रेमचंद की रचनाएँ जैसे ''सद्गति'' और ''ठाकुर का कुआँ'' दलित जीवन का यथार्थवादी चित्रण करती हैं, किंतु ये सहानुभूति पर आधारित हैं, न कि दलित लेखकों की आत्म–चेतना से उपजी। वास्तविक दलित विमर्श का विकास 1970–80 के दशक में मराठी दलित साहित्य के प्रभाव से हुआ, जब ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान और जयप्रकाश कर्दम जैसे लेखकों ने दलित अनुभवों को साहित्य के केंद्र में स्थापित किया। 1990 के दशक में मंडल आयोग की सिफारिशों ने इस विमर्श को तीव्रता प्रदान की, जिससे दलित साहित्य ने मुख्यधारा में स्थान पाया। समकालीन दौर में दलित विमर्श ने नारीवादी और वैश्विक आत्मसम्मान के विचारों से संवाद स्थापित किया है। कुसुम मेघवाल की कविताएँ दलित स्त्री के दोहरे शोषण को उजागर करती हैं, जबकि अजय नावरिया की ''पटकथा'' आधुनिक दलित युवा की आंतरिक उथल–पुथल को चित्रित करती है। 2025 तक, दलित विमर्श ने डिजिटल मंचों और नवीन इतिहास लेखन के माध्यम से अपनी पहुंच बढ़ाई है, जहाँ यह जाति के पारंपरिक ढांचे को पुनर्विचारित करता है। हाल के अध्ययनों में दलित साहित्य को आत्मसम्मान और सामाजिक न्याय की खोज के रूप में देखा गया है। यह विमर्श जाति के प्रश्न को परंपरागत सीमाओं से आगे ले जाता है, जो इसकी निरंतर प्रासंगिकता को रेखांकित करता है। दलित विमर्श हिंदी साहित्य को समावेशी बनाता है और समाज की अंतर्निहित विषमताओं को चुनौती देता है। यह ब्राह्मणवादी कथाओं को खंडित कर दलितों की लोकभाषा को साहित्यिक मान्यता देता है और सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं को उजागर करता है। भविष्य में, यह विमर्श वैश्विक संदर्भों में और सशक्त होकर मुक्ति के वैचारिक आधार को और मजबूत करेगा।

स्वर का विश्लेषण

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श का स्वर मूलतः विद्रोही और आक्रोशपूर्ण है, जो ब्राह्मणवादी व्यवस्था तथा सामाजिक अन्याय के विरुद्ध खड़ा होता है। यह स्वर परंपरागत हिंदी साहित्य के सौंदर्यबोधी या राष्ट्रवादी लहजे से भिन्न है, क्योंकि यह जातिगत पदानुक्रम की संरचनाओं को विखंडित कर दलित अस्मिता को सशक्त बनाता है। दलित स्वर की विशेषता उसकी तीक्ष्णता और प्रतिरोध की क्षमता में निहित है, जो लेखकों की व्यक्तिगत अनुभूतियों से उपजता है। उदाहरणस्वरूप, ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा ''जूठन'' में स्वर शोषण की कठोरता को अभिव्यक्त करता है, जहाँ लेखक कहते हैं कि उनका जीवन अभिशाप सरीखा था। यह स्वर न केवल पीड़ा का वर्णन करता है, अपितु वर्णव्यवस्था पर प्रहार करता है, जो दलित लेखन की वैचारिक नींव है। दलित विमर्श के स्वर का विकास भक्तिकाल से जुड़ा है, जहाँ कबीर और रैदास ने जातिवाद के विरुद्ध स्वर उठाया।

आधुनिक दौर में प्रेमचंद की रचनाओं में दलित स्वर सहानुभूति–आधारित था, जैसे ''सद्गति'' में दुखाराम का चित्रण। किंतु समकालीन दलित लेखकों में यह आत्म–चेतना से युक्त हो गया। सूरजपाल चौहान की कविताओं में स्वर क्रांतिकारी है, जो सामूहिक प्रतिरोध को उजागर करता है। जयप्रकाश कर्दम की रचनाएँ जाति–विरोधी स्वर को मजबूत करती हैं, जहाँ भाषा की कटुता दलित संघर्ष की तीव्रता को दर्शाती है। विश्लेषण की दृष्टि से, दलित स्वर ने हिंदी साहित्य की भाषा को परिवर्तित किया है। यहाँ मानक हिंदी के स्थान पर लोकभाषा और बोलचाल का प्रयोग प्रामाणिकता लाता है, जो पाठक को दलित अनुभव से जोड़ता है। कुसुम मेघवाल की कविताएँ दलित नारी स्वर को प्रस्तुत करती हैं, जो जाति और लिंग के द्वंद्व को विद्रोही लहजे में व्यक्त करती हैं। अजय नावरिया की कहानियाँ आधुनिक दलित युवा के स्वर को चित्रित करती हैं, जहाँ आक्रोश शहरी संदर्भों में बदलता है। तुलनात्मक रूप से, गैर–दलित लेखकों का स्वर दया–आधारित होता है, जबकि दलित लेखकों का स्वर सशक्तिकरण से प्रेरित है। यह स्वर साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाता है, जो अम्बेडकरवादी मुक्ति दर्शन से जुड़ा है। समकालीन संदर्भ में, दलित स्वर डिजिटल मंचों पर और सशक्त हुआ है, जहाँ यह वैश्विक अस्मिता विमर्शों से संवाद करता है। यह स्वर ब्राह्मणवादी कथाओं को चुनौती देता है और दलित लेखन को मुख्यधारा में स्थापित करता है। दलित विमर्श

का स्वर न केवल साहित्य को समृद्ध करता है, अपितु समाज में समानता की मांग को बल प्रदान करता है। भविष्य में, यह स्वर और अधिक बहुआयामी होकर सामाजिक न्याय की दिशा में योगदान देगा।

स्वर की विशेषताएँ

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श का स्वर विद्रोही, आक्रोशपूर्ण और आत्म–चेतना से युक्त है, जो वर्णव्यवस्था के संरचनात्मक अन्याय को चुनौती देता है। यह स्वर परंपरागत हिंदी साहित्य के सौंदर्यबोधी या राष्ट्रवादी लहजे से भिन्न है, क्योंकि यह दलित अनुभवों की कठोर सच्चाई को प्रामाणिक रूप से व्यक्त करता है। दलित स्वर की विशेषताएँ साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बनाती हैं, जो दलित अस्मिता को केंद्र में लाती हैं। निम्नलिखित इसके प्रमुख आयाम हैं :–

आक्रोश : दलित विमर्श का स्वर शोषण और अपमान के खिलाफ तीव्र प्रतिक्रिया को दर्शाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा ''जूठन'' इस आक्रोश का सशक्त उदाहरण है, जहाँ लेखक दलित जीवन की नरकीयता को चित्रित करता है। वाक्य जैसे हमारा जीवन एक अभिशाप था, सामाजिक बहिष्कार और अपमान की गहरी पीड़ा को व्यक्त करते हैं। यह आक्रोश ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर प्रहार करता है, जो दलित लेखन की वैचारिक नींव है। यह स्वर पाठक में जागृति पैदा करता है और साहित्य को यथार्थ की कसौटी पर खरा बनाता है।

प्रतिरोध : दलित स्वर सामाजिक ढाँचे को चुनौती देने का सशक्त औजार है। सूरजपाल चौहान की कविताएँ इस प्रतिरोध को मुखरित करती हैं, जहाँ जातिगत अन्याय के विरुद्ध क्रांतिकारी भावना प्रकट होती है। इन रचनाओं में स्वर सामूहिक संघर्ष को दर्शाता है, जो वर्णव्यवस्था की जकड़न को तोड़ने का प्रयास करता है। यह प्रतिरोधी स्वर लोकभाषा और बोलचाल के प्रयोग से प्रामाणिकता प्राप्त करता है, जो दलित अनुभव को पाठक के समक्ष जीवंत करता है।

आत्म–चेतना : दलित स्वर का तीसरा आयाम आत्म–चेतना है, जो दलित अस्मिता के सशक्तिकरण को रेखांकित करता है। कुसुम मेघवाल की कविताएँ इस स्वर को प्रस्तुत करती हैं, जहाँ दलित स्त्री के दोहरे शोषण के बावजूद आत्मसम्मान की भावना उभरती है। यह स्वर न केवल पीड़ा को व्यक्त करता है, बल्कि दलित समुदाय की संभावनाओं को उजागर करता है, जो साहित्य को सकारात्मक दिशा देता है।

संवेदना का विश्लेषण

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श की संवेदना मूलतः पीड़ा, अपमान और संघर्ष से उपजती है, जो दलित जीवन की कठोर वास्तविकता को मानवीय आयाम प्रदान करती है। यह संवेदना केवल दुखांत नहीं है, अपितु सशक्तिकरण और आशा की ओर उन्मुख होती है, जो वर्णव्यवस्था की संरचनाओं को चुनौती देती है। दलित संवेदना का वैचारिक आधार अम्बेडकरवादी मुक्ति दर्शन में निहित है, जो दलितों की भावनात्मक गहराई को सामाजिक न्याय की मांग से जोड़ता है। विश्लेषण की दृष्टि से, यह संवेदना साहित्य को भावनात्मक तीव्रता देती है, जहाँ दलित पात्र न केवल पीड़ित हैं, बल्कि संघर्षशील और प्रतिरोधी भी। दलित विमर्श की संवेदना का विकास भक्तिकाल से जुड़ा है, जहाँ रैदास और कबीर ने जातिगत भेदभाव की पीड़ा को व्यक्त किया। आधुनिक दौर में प्रेमचंद की रचनाओं जैसे ''कफन'' और ''सद्गति'' में संवेदना दुखाराम और घीसू–माधव की दयनीय स्थिति में प्रकट होती है, किंतु यह सहानुभूति–आधारित है।

समकालीन दलित लेखकों में संवेदना आत्म–चेतना से युक्त हो गई। ओमप्रकाश वाल्मीकि की ''जूठन'' में संवेदना दलितों के दैनिक अपमान और शोषण की गहन अनुभूति है, जो पाठक में सामाजिक जागृति पैदा करती है। लेखक का वर्णन, जैसे जूठन खाने की मजबूरी, पीड़ा की गहराई को उजागर करता है, जो दलित जीवन की नरकीयता को चित्रित करता है। कुसुम मेघवाल की कविताएँ दलित नारी संवेदना को रेखांकित करती हैं, जहाँ जाति और लिंग के दोहरे शोषण की पीड़ा व्यक्त होती है। उनकी रचनाएँ स्त्री की आंतरिक उथल–पुथल को दर्शाती हैं, जो संघर्ष से आशा की किरण निकालती हैं। अजय

नावरिया की ''पटकथा'' में संवेदना आधुनिक दलित युवा की भावनात्मक जटिलता को चित्रित करती है, जहाँ सामाजिक अपेक्षाओं और व्यक्तिगत इच्छाओं का द्वंद्व उभरता है। जयप्रकाश कर्दम की कविताएँ सामूहिक दलित संवेदना को व्यक्त करती हैं, जो पीड़ा से प्रतिरोध की ओर बढ़ती है। विश्लेषणात्मक रूप से, दलित संवेदना साहित्य की भाषा को प्रभावित करती है दृ सरल, कटु शब्दों का प्रयोग जो दलित अनुभव की प्रामाणिकता को बढ़ाता है। यह संवेदना मुख्यधारा साहित्य के रोमांटिक या सौंदर्यबोधी भाव से अलग है, क्योंकि यह यथार्थ की कठोरता पर केंद्रित है। समकालीन संदर्भ में, दलित संवेदना डिजिटल मंचों पर विस्तारित हुई है, जहाँ यह वैश्विक मानवाधिकार विमर्शों से जुड़ती है। सूरजपाल चौहान की रचनाएँ दलित संघर्ष की सामूहिक संवेदना को उजागर करती हैं, जो आशा और परिवर्तन की भावना को बल देती हैं। यह संवेदना साहित्य को मानवीय बनाती है और सामाजिक परिवर्तन की मांग करती है, जो दलित विमर्श की साहित्यिक प्रासंगिकता को रेखांकित करता है। दलित संवेदना न केवल पीड़ा का चित्रण है, अपितु मुक्ति की दार्शनिक यात्रा है, जो हिंदी साहित्य को समृद्ध करती है। भविष्य में, यह संवेदना और अधिक बहुआयामी होकर समाज में समानता की स्थापना में योगदान देगी। दलित विमर्श की संवेदना अंततः मानवता की सार्वभौमिकता को स्थापित करती है, जो जातिगत बंधनों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है।

संवेदना के आयाम

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श की संवेदना दलित जीवन की गहन भावनात्मक अनुभूति को व्यक्त करती है, जो पीड़ा, संघर्ष और आशा के आयामों में प्रकट होती है। यह संवेदना वर्णव्यवस्था की हिंसा को उजागर कर सामाजिक परिवर्तन की मांग करती है। निम्नलिखित इसके प्रमुख आयाम हैं :–

पीड़ा : दलित संवेदना का मूल आधार दैनिक अपमान और शोषण की भावना है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की श्जूठनश में यह पीड़ा दलित जीवन की कठोर सच्चाई को चित्रित करती है। लेखक का वर्णन, जैसे जूठन खाने की मजबूरी, सामाजिक बहिष्कार की गहरी अनुभूति को दर्शाता है। यह संवेदना पाठक में न केवल सहानुभूति, बल्कि अन्याय के प्रति जागृति पैदा करती है। यह आयाम दलित विमर्श को भावनात्मक गहराई देता है, जो साहित्य को यथार्थ की कसौटी पर खरा बनाता है।

संघर्ष : दलित संवेदना सामाजिक न्याय की मांग में संघर्ष की भावना को व्यक्त करती है। अजय नावरिया की ''पटकथा'' में यह आयाम आधुनिक दलित युवा की आंतरिक और सामाजिक उथल–पुथल को दर्शाता है, जहाँ पात्र सामाजिक अपेक्षाओं और व्यक्तिगत इच्छाओं के बीच जूझते हैं। यह संघर्ष केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामूहिक है, जो वर्णव्यवस्था के विरुद्ध प्रतिरोध को मजबूत करता है। यह संवेदना दलित विमर्श को गतिशील बनाती है, जो परिवर्तन की दिशा में प्रेरित करती है।

आशा : दलित संवेदना का तीसरा आयाम आशा है, जो दलित अस्मिता के सशक्तिकरण को रेखांकित करता है। कुसुम मेघवाल की कविताएँ इस आशा को व्यक्त करती हैं, जहाँ दलित स्त्री के दोहरे शोषण के बावजूद आत्मसम्मान और मुक्ति की भावना उभरती है। यह आयाम पीड़ा और संघर्ष से आगे बढ़कर दलित समुदाय की संभावनाओं को दर्शाता है, जो साहित्य को सकारात्मक दिशा देता है।

निष्कर्ष : –

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श एक क्रांतिकारी आंदोलन है, जो स्वर और संवेदना के माध्यम से दलित अस्मिता को सशक्त करता है। इसका विद्रोही स्वर और गहन संवेदना साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त साधन बनाते हैं। यह विमर्श वर्णव्यवस्था की संरचनात्मक हिंसा को उजागर कर दलित अनुभवों को केंद्र में लाता है, जो हिंदी साहित्य को समावेशी और यथार्थवादी बनाता है। दलित विमर्श का स्वर आक्रोशपूर्ण और प्रतिरोधी है, जो ब्राह्मणवादी कथाओं को खंडित करता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की ''जूठन'' में यह स्वर शोषण की कठोरता को व्यक्त करता है, जबकि सूरजपाल चौहान और कुसुम मेघवाल की रचनाएँ सामूहिक प्रतिरोध और आत्म–चेतना को रेखांकित करती हैं। यह स्वर लोकभाषा के प्रयोग से प्रामाणिकता

प्राप्त करता है, जो दलित अनुभव को पाठक के समक्ष जीवंत करता है। संवेदना की दृष्टि से, दलित विमर्श पीड़ा, संघर्ष और आशा के आयामों को समेटता है। वाल्मीकि की आत्मकथा में दैनिक अपमान की संवेदना पाठक में जागृति पैदा करती है, जबकि अजय नावरिया की ''पटकथा'' आधुनिक दलित युवा की उथल–पुथल को चित्रित करती है। मेघवाल की कविताएँ दलित स्त्री के दोहरे शोषण को उजागर कर सशक्तिकरण की ओर बढ़ती हैं। यह संवेदना साहित्य को भावनात्मक गहराई देती है, जो सामाजिक समानता की मांग को बल प्रदान करती है। दलित विमर्श अम्बेडकरवादी मुक्ति दर्शन से प्रेरित होकर साहित्य को केवल कला तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे सामाजिक न्याय का औजार बनाता है।

दलित विमर्श ने डिजिटल मंचों और वैश्विक आत्मसम्मान विमर्शों से संवाद स्थापित कर अपनी प्रासंगिकता को और सशक्त किया है। यह विमर्श हिंदी साहित्य को समृद्ध कर समाज की अंतर्निहित विषमताओं को चुनौती देता है। भविष्य में, दलित विमर्श को मुख्यधारा साहित्य के साथ और अधिक एकीकृत करने की आवश्यकता है, ताकि यह और व्यापक हो सके। यह एकीकरण न केवल साहित्यिक समावेशिता को बढ़ाएगा, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं को भी प्रबल करेगा। दलित विमर्श का स्वर और संवेदना मानवता की सार्वभौमिकता को रेखांकित करते हैं, जो जातिगत बंधनों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। यह विमर्श हिंदी साहित्य को नई दिशा देता है, जो सामाजिक समानता और मुक्ति के वैचारिक आधार को मजबूत करता है।

संदर्भ सूची :–

1. वाल्मीकि, ओमप्रकाश, जूठन, दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1997, पृ. सं. 122–124
2. नावरिया, अजय, पटकथा, दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2010, पृ. सं. 45–52
3. चौहान, सूरजपाल, दलित साहित्य, स्वर और संवेदना, इलाहाबाद, साहित्य भंडार, 2015, पृ. सं. 78–85
4. मेघवाल, कुसुम, हमारी जमीन, दिल्ली, स्वयं प्रकाशन, 2018, पृ. सं. 112–120
5. कर्दम, जयप्रकाश, दलित साहित्य, एक परिचय, दिल्ली, अनामिका प्रकाशन, 2009, पृ. सं. 30–38
6. प्रेमचंद, कफन, इलाहाबाद, हंस प्रकाशन, 1936, पृ. सं. 15–22
7. कबीर, कबीर ग्रंथावली, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1972, पृ. सं. 56–65
8. रैदास, रैदास बानी, लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, 1985, पृ. सं. 40–48
9. सिंह, शरणकुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 2001, पृ. सं. 90–98
10. बघेल, रामचंद्र, हिंदी दलित साहित्यरू उद्‌भव और विकास, भोपाल, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2014, पृ. सं. 130–140
11. अम्बेडकर, भीमराव, जाति का विनाश, दिल्ली, गौतम बुक सेंटर, 2004, पृ. सं. 200–210
12. गौतम, रमेश, दलित साहित्य की अवधारणा, दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2012, पृ. सं. 65–75
13. तिवारी, श्यामसुंदर, दलित विमशर्रू साहित्य और समाज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, 2016, पृ. सं. 100–110
14. शर्मा, प्रदीप, हिंदी साहित्य में दलित चेतना, दिल्ली, अनामिका प्रकाशन, 2019, पृ. सं. 150–160
15. यादव, रमाकांत, दलित साहित्य : सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2020, पृ. सं. 180–185